अपभ्रंश और हिन्दी में जैन-विद्या विषयक अनुसंधान की संभावनाएँ

डॉ० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

अद्यावधि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषाओं में प्राप्य जैनविद्या की विपुल संपदा जिज्ञासुओं द्वारा प्रकाश में लाई जा चुकी है, तथापि अभी भी अनेक क्षेत्र ऐसे हैं, जो सर्वथा अछूते हैं या जिनमें अत्यल्प मात्रा में ही अनुसंधान हो सका है। अपभ्रंश को गुलेरी जी ने 'पुरानी हिन्दी' कहा और महापण्डित राहुल जी ने अपभ्रंश के महाकवि स्वयंभूदेव को 'हिन्दी' का आदि महाकवि कहना चाहा, जिसके मूल में अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य के प्रति 'लगाव' पैदा कराने की भावना रही होगी; यही मैं मानता हूँ। अस्तु।

जैन-साहित्य के अनुसंधित्सुओं ने इस साहित्य की गहरी परख के बाद पाया कि तत्वतः सम्पूर्ण जैन-साहित्य में लोक-भावना का सम्मान सर्वोपरि हुआ, फलतः इसे व्यापक समर्थन भी मिला। डॉ. हीरालाल जैन का कथन द्रष्टव्य है—'जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर ने लोकोपकार की भावना से सुबोध वाणी अर्धमागधी का उपयोग किया तथा उनके गणधरों ने उसी भाषा में उनके उपदेशों का संकलन किया। उस भाषा और साहित्य की ओर जैनियों का सदैव आदर भाव रहा तथापि उनकी यह भावना लोक-भाषाओं के साथ न्याय करने में बाधक नहीं हुई।'[1]

जैन-कवियों में जैनेतर लोक मान्यताओं का सम्मान करने की जो प्रवृत्ति रही, उसने एक ओर तो जैन साहित्य को समृद्ध बनाने की संभावनाओं के द्वार खोल दिए और दूसरी ओर जैनेतर विद्वानों को आकृष्ट करने की शक्ति अर्जित की। जैन-साहित्य की यह उदारता अवसरवाद से प्रेरित न होकर जैन-धर्म के आधारभूत दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक मतों से संपुष्ट है। राम-लक्ष्मण एवं कृष्ण-बलराम के प्रति हिन्दुओं की श्रद्धा देखकर इन्हें 'त्रिषष्टि शलाकापुरुषों' में स्थान देकर पुराण-साहित्य

१. डा० हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० ३–४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में रखना इसी 'उदारता' का पुष्ट प्रमाण है। जैन-मत के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर—दोनों ही सम्प्रदायों में विपुल साहित्य रचा गया। दिगम्बर-मत के आचार्यों ने शौरसेनी में तथा श्वेताम्बर मत वालों ने महाराष्ट्री में रचना की है।[1]

अपभ्रंश में उपलब्ध जैन-साहित्य को अध्ययन की सुविधा हेतु निम्न रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है :

(१) आगम साहित्य —(i) मूल आगम-साहित्य
(ii) आगम-टीका-साहित्य

(२) आगमेतर साहित्य—(i) जैन-धर्म के सिद्धान्तों से संबद्ध धार्मिक साहित्य
(ii) लौकिक साहित्य
(iii) व्याकरण, छन्द-शास्त्र आदि से संबद्ध साहित्य

(१) आगम साहित्य

जैन-आगम साहित्य में प्राचीन जैन-परम्पराएँ, अनुश्रुतियाँ, लोककथाएँ, रीति-रिवाज, धर्मोपदेश आदि समाहित हैं, जिनके शोधपरक गम्भीर अध्ययन से अनेक बिखरी कड़ियों को जोड़ा जा सकता है। आगम-साहित्य में छिपा जैन-वास्तुशास्त्र, संगीत, नाट्य, प्राणिविज्ञान तथा वनस्पतिविज्ञान आदि हम शोध की कसौटी पर यदि कस सकें, तो ज्ञान के नए क्षितिज खुलेंगे "छेदसूत्र" तो आगम-साहित्य का प्राचीनतम महाशास्त्र ही है, जिसमें श्रमण-संस्कृति एवं श्रमणाचार का तात्त्विक रूप निहित है।[2]

मूल आगम-साहित्य के शोध की मुख्य सम्भावित दिशाएँ मेरे मतानुसार निम्न हो सकती हैं—

(१) **भाषाशास्त्रीय शोध** —भाषाशास्त्रीय शोध से जैनागमों की मूलभूत प्रवृत्ति जानी जा सकती है और विभिन्न पाठान्तरों की समस्या का समाधान किया जा सकता है। भाषा की समरूपता, शब्द-प्रयोग, ध्वनि-परिवर्तन एवं अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से आगम-साहित्य का शोधपरक मूल्यांकन हमारे युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हो सकती है।

---

१. डा० रामसिंह तोमर : प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य, पृ० ५।

२. डा० जगदीशचन्द्र जैन : प्राकृत-साहित्य का इतिहास, पृ० ४३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) **काल-निर्णय सम्बन्धी शोध**—आगम-साहित्य की प्राचीनता पर निरन्तर प्रश्न-चिह्न लगते रहे हैं, अतः यह शोध की एक नई दिशा है। किस 'वाचना' में कितने आगम संग्रहीत हुए, इसका निर्णय आगमों के तुलनात्मक भाषा-वैज्ञानिक शोध द्वारा करना होगा और साथ ही, आगमों के प्रामाणिक, पूर्ण एवं आलोचनात्मक-संस्करण तैयार कराना भी जरूरी है।

(३) **लोकतात्त्विक शोध**—आगम-साहित्य के शोध की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिशा 'लोकतात्त्विक अनुशीलन' ही मेरी दृष्टि से है। आगम-साहित्य 'लोक-कथाओं का अजस्र स्रोत' है और लोकतत्त्व के कारण ही यह लोकग्राही बना होगा, मेरी यह दृढ़ मान्यता है। प्रत्येक आगम ग्रन्थ का "लोक-तत्त्व" की दृष्टि से मूल्यांकन विशिष्ट शोध-दिशा होगी, यद्यपि यह व्यय एवं श्रमसाध्य कार्य होगा। "जैन-आगमों की लोक कथाएँ" तथा "आगमों में अभिव्यक्त लोक-धर्म एवं लोक-संस्कृति" आदि अनेक विषय इस दृष्टि से शोधार्थियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(ii) **आगम-टीका-साहित्य**—सम्पूर्ण टीका-साहित्य को भी उपर्युक्त आधारों पर भाषाशास्त्रीय, काल-निर्णय सम्बन्धी, वस्तुवर्णन विषयक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से शोध की कसौटी पर कसा जाना चाहिए। जैनागमों पर उपलब्ध विपुल व्याख्यात्मक साहित्य, जिसमें निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी एवं टीका साहित्य है,[1] स्वतन्त्र महत्त्व का है, जिसका अर्थ-वैज्ञानिक, शैली-वैज्ञानिक एवं लोकतात्त्विक शोधपरक अनुशीलन जैन-विद्याओं एवं जैन-दर्शन के विकास में नए कीर्तिमान स्थापित करेगा, यह मेरा निश्चित अभिमत है।

आगमेतर-जैन-साहित्य—जैन-सिद्धान्तों एवं दार्शनिक तत्त्वज्ञान को निरूपित करने के लिए जैन-चिन्तकों एवं कवियों ने विपुल और विविधमुखी साहित्य रचा है, जो आज भी जैन-भण्डारों में भरा पड़ा है। वस्तुतः आगमेतर-जैन-साहित्य की विपुल संपदा को उजागर करने का महत्तर दायित्व जैनविद्याओं के अनुसंधाताओं को पूर्ण करना है। इस संपूर्ण साहित्य को मैं निम्न रूपों में रखकर शोध-संभावनाएं देखूंगा—

(१) जैन-तत्त्व-चिन्तन से संबद्ध धार्मिक साहित्य
(२) लौकिक साहित्य

---

१. डा० जगदीशचन्द्र जैन : प्राकृत-साहित्य का इतिहास पृ० १९४/१९५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) लोक-कथा-साहित्य

(४) व्याकरण, छन्द-शास्त्र एवं कला विषयक साहित्य

उपर्युक्त आगमेतर-साहित्य का विविधमुखी वैभव शोधार्थियों के लिए अनन्त संभावनाओं से परिपूर्ण है, जो लगभग १५०० वर्षों की सुदीर्घ परम्परा को समेटे हुए है।

(i) **जैन-तत्त्व-चिन्तन मूलक साहित्य** इस प्रकार का साहित्य अपभ्रंश और हिन्दी में उपलब्ध है, जिसमें तत्त्वज्ञान, जैनाचार, क्रिया-काण्ड, तीर्थ एवं ऐतिहासिक प्रबन्धों का विवेचन अत्यन्त व्यवस्थित रूप में श्वेताम्बरों तथा दिगम्बरों द्वारा निबद्ध किया गया है। दर्शन एवं तत्त्व निरूपण की दृष्टि से दिगम्बर-परम्परा श्वेताम्बर परम्परा से भिन्न हो गई है।[1] इस साहित्य में (१) सामान्य-ग्रंथ, (२) दर्शन-खण्डन-मण्डन-ग्रन्थ, (३) सिद्धान्त-ग्रन्थ, (४) कर्म-सिद्धान्त-ग्रन्थ, (५) श्रावकाचार विषयक ग्रन्थ, (६) प्रकरण ग्रन्थ, (७) समाचारी ग्रन्थ एवं (८ विधि-विधान विषयक ग्रन्थ मुख्यतः आते हैं। इस जैन-तत्त्वमूलक साहित्य में धर्म, दर्शन, आचार, कर्मकाण्ड आदि के प्रकाशन से सम्बद्ध शोध की अनन्त सम्भावनाएँ निहित हैं। जैनाचार एवं श्रावकाचार आदि के तात्त्विक विश्लेषण के लिए शोध महत्त्वपूर्ण होगा।

(ii) **लौकिक साहित्य**—अपभ्रंश तथा हिन्दी में रचा गया आगमेतर जैन-लौकिक साहित्य सर्वाधिक मूल्यवान् निधि है, जिसने आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य को अनेक रूपों में प्रभावित भी किया है। ईसा की प्रथम शती से सत्रहवीं शती तक इस प्राणभूत साहित्य की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित हुई। जैन कवियों का लौकिक साहित्य इतना है कि कई शताब्दियों तक शोधकर्ता इसका मूल्यांकन अनवरत कर सकते हैं। इस क्षेत्र में एक-एक साहित्य-विधा का विविध दिशाओं में शोधपरक अनुशीलन किया जा सकता है। मैं कतिपय प्रमुख विधाओं को ले रहा हूँ—

(१) कथा-साहित्य (२) पुराण-साहित्य या चरित-साहित्य
(३) प्रबन्ध काव्य—(i) प्रेमाख्यानक काव्य, (ii) खण्ड काव्य
(४) नाटक साहित्य (५) मुक्तक साहित्य
(६) रूपक-काव्य (७) स्फुट रचनाएँ

उपर्युक्त लौकिक साहित्य में जीवन धड़कता है और सांस्कृतिक चेतना मुखर है।

---

१. डा० हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैन-धर्म का योगदान, पृ० ८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क) **कथा-साहित्य**—संस्कृत एवं प्राकृत भाषा से चलकर कथा-काव्यों की परम्परा अपभ्रंश एवं हिन्दी तक अविरल चलती है। अपभ्रंश का कथा-साहित्य लोक जीवन तथा धार्मिक जीवन से विशिष्ट संयोजित है।[1] अपभ्रंश एवं हिन्दी के जैन-कथा-साहित्य का काव्यात्मक मूल्यांकन वर्तमान शोध की सर्वथा अछूती धारा है। जैन-साहित्य के विद्वान् डॉ. जगदीशचन्द्र जैन का अभिमत है कि जैन-कथा-साहित्य का भाषा-वैज्ञानिक शोध महत्त्वपूर्ण है, जिससे प्राकृत-अपभ्रंश शब्दों के रूपों, व्युत्पत्ति-शास्त्र की टूटी परम्पराओं तथा अर्थ-विज्ञान की गुत्थियों को सुलझाया जा सकता है।[2] कथा-साहित्य का समाजपरक अध्ययन विशेष उपादेय है, क्योंकि सामाजिक यथार्थ-बोध, धार्मिक-परिवेश, जातीय-परम्परा एवं लोक-विश्वासों की विलक्षण अभिव्यंजना जैन-कथा-साहित्य में हुई है, जिसके उद्घाटन से मध्यकालीन आर्यभाषा-समाज की लुप्त प्रवृत्तियों का भी उद्घाटन होगा। मध्यकालीन भारतीय-संस्कृति के नवीन तत्त्वों के प्रकाशन हेतु कथा-साहित्य के सांस्कृतिक शोध की दिशा सर्वाधिक मूल्यवान् सिद्ध होगी।

जैन-कथा-ग्रंथों का सम्पादन स्वयं में विशिष्ट संभावना से परिपूर्ण है। शैलीगत सौन्दर्य विवेचन के लिए शोध भी नई दिशा देगा। जैन-कथाओं में ऐहिकता के साथ-साथ धर्मोपदेश की विशिष्ट परम्परा का मूल्यांकन मनोवैज्ञानिक और शैली वैज्ञानिक शोध की अपेक्षा रखता है। जैन-कथा-साहित्य का प्रभाव हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी की कथाओं पर भी पड़ा है, अतः तुलनात्मक अनुसंधान की संभावनाएँ भी कम नहीं हैं। इस संदर्भ में जान हर्टल का अभिमत उल्लेख्य है—जैन-कथा-साहित्य केवल संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए ही उपयोगी नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता के इतिहास पर इससे महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।[3]

(ख) **पुराण-साहित्य या चरित साहित्य**—महाकवि स्वयंभूदेव, पुष्पदन्त, रइधू, हेमचन्द्र आदि द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक आदि परिस्थितियों को

---

१. डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री : अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध-प्रवृत्तियाँ, पृ० ३।

२. डा० जगदीशचन्द्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३७२।
देशी भाषा के अनेक महत्त्वपूर्ण शब्द इस साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, जिनका भाषाविज्ञान की दृष्टि से अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है।

३. जान हर्टल : आन द लिटरेचर आफ द श्वेताम्बर जैन्स (प्रा० सा० इ०) पृ० ३७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधार बनाकर रचा गया चरित-साहित्य शोध की अनेकानेक संभावनाओं से परिपूर्ण है। अन्तः एवं बाह्य परिवेशों के आधार पर तुलनात्मक शोध की दिशा महत्त्वपूर्ण है। स्वयंभूदेव एवं पुष्पदन्त के जीवन-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, पुष्पदन्त एवं रइधू के काव्य-सिद्धान्तों की तुलना जैसे अन्तः तुलनात्मक शोधविषयों के साथ-साथ स्वयंभू प्रणीत रिट्ठणेमिचरिउ एवं सूरसागर की तुलना, पुष्पदन्त एवं तुलसी के काव्यादर्शों की तुलना, अपभ्रंश राम-कृष्ण काव्य एवं हिन्दी-रामकृष्ण काव्य की मूल चेतना की तुलना जैसे अनेक शोध विषय अछूते पड़े हैं। वस्तुतः अपभ्रंश की चरित्रकाव्य-परम्परा का विशद् प्रभाव आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल के हिन्दी-काव्यों पर गहरा है, अतः यहाँ अनन्त संभावनाएँ भरी पड़ी हैं। सर्वाधिक अछूती दिशा है काव्य शास्त्रीय शोध की, चूँकि संस्कृत की टूटी काव्यशास्त्रीय परम्परा को इन ग्रंथों में ही ढूंढ़ कर हिन्दी-काव्यशास्त्र का आधार खोजा जा सकता है।

अपभ्रंश के चरित-काव्यों का ध्वनि-सिद्धान्त, अलंकार-सिद्धान्त, वक्रोक्ति-सिद्धान्त एवं रस-सिद्धान्त के आधार पर विशिष्ट अनुशीलन भी शोध की सर्वथा नवीन दिशा हो सकती है। इन चरित-काव्यों में लोकतत्त्व प्रचुर परिमाण में है, अतः लोक-संकृति, लोक-विश्वास, लोक-धर्म आदि शोध-बिन्दुओं पर भी सफलतापूर्वक अनुसंधाता चल सकता है। चरित्र-चित्रण शिल्प एवं मनोविज्ञान के आधार पर भी इनका स्वतंत्र एवं तुलनात्मक शोध संभावित है।

(ग) जैन-प्रबंध काव्यधारा—प्रबन्ध-शैली जैन कवियों की विशिष्ट शैली रही है, जिसके अन्तर्गत अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्य एवं खण्डकाव्य आते हैं। अपभ्रंश की प्रेमाख्यान-परम्परा हिन्दी के मध्यकाल तक चली है और लौकिकता के समावेश से यह लोकप्रिय भी हुई। इस परम्परा में विलास और शृंगार की प्रधानता निश्चय ही जैन धर्म में व्याप्त निषेधों की प्रतिक्रिया का मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन रहा होगा। मेरे मतानुसार यह सर्वथा अनूठा शोध विषय रहेगा कि धर्म, आचार एवं विधि-निषेधों के कठोरतम प्रतिबन्धों में शृंगार कैसे फूट पड़ा और अक्षुण्ण बना रहा।

प्रेमाख्यान-परम्परा में नायक-नायिका के निर्द्वन्द्व प्रेम-चित्रण में परम्परित काव्य-व्यापारों एवं कवि-समयों का प्रयोग विवेच्य है। अब तक भी जैन प्रेमाख्यानक काव्यों का शोधपरक मूल्यांकन शेष ही है, जहाँ मनोवैज्ञानिक अनुशीलन के साथ-साथ काव्य-रूढ़ियों के स्वरूप एवं प्रयोग जैसे शास्त्रीय विषयों पर भी उच्चस्तरीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोध संभव है। खण्ड-काव्य-परम्परा में संदेश रासक जैसे अनेक काव्य ग्रंथों का सम्पादन एवं विवेचनात्मक अनुशीलन प्रतीक्षित है। तुलनात्मक शोध भी यहाँ संभव है।

(घ) नाटक साहित्य—अपभ्रंश के नाटकों पर अद्यावधि दृष्टि ही नहीं गई है। जैन रचनाकारों ने नाट्य-विद्या का प्रयोग न किया हो, यह संभव नहीं। प्राकृत की विशिष्ट सट्टक परम्परा अपभ्रंश में कहाँ चली गई? हिन्दी के रंगमंच को अपभ्रंश से क्या मिला? अभिनय, वेशभूषा एवं मंच आदि की परम्परा को नियोजित किया जाना इसी शोध से संभव होगा। डॉ. हीरालाल जैन ने स्वीकार किया है कि जैन-साहित्य में नाटकों की कमी का कारण वस्तुतः जैन-मुनियों के विनोद आदि कार्यों में भाग लेने का निषेध ही है।[1] इस तथ्य के सन्दर्भ में नाटक-साहित्य का मूल्यांकन बहुत महत्त्वपूर्ण होगा।

(च) मुक्तक रचनाएँ—अपभ्रंश एवं हिन्दी के जैन-मुक्तक साहित्य में हमें जिस 'रहस्यवादी भावधारा' के दर्शन होते हैं, उसने भक्तिकाल एवं आधुनिक छायावादी काव्य को प्रभावित किया है। इस साहित्य में जैन-धर्म का तत्त्वचिन्तन भी समाहित है। कबीर, जायसी, प्रसाद, पन्त, निराला आदि की रहस्यवादी चेतना का जैन-मुक्तककारों से तुलनात्मक शोध बहुत उपादेय होगा। जोइन्दु, कनकामर, मुनि रामसिंह एवं सुप्रभाचार्य प्रभृति कवि-चिन्तकों की मुक्तक रचनाओं का 'दर्शन, नीति, समाज-चेतना' आदि के संदर्भ में अनुशीलन आवश्यक है। जैन मुक्तककारों की मूलभूत विशेषता यह है कि वे जैन-धर्म से सम्बद्ध होकर भी साधना में व्यापक एवं उदार दृष्टि रखते हैं।[2] मुक्तक-काव्य की एक दूसरी धारा उपदेशात्मक है, जिसमें दोहा छन्द में गृहस्थों के लिए उपदेश हैं। इस धारा का समाजपरक एवं धर्मपरक शोधात्मक अनुशीलन विशेष उपयोगी रहेगा। दार्शनिक आधार पर भी इस काव्य की परख जरूरी है।

(छ) स्फुट रचनाएँ—अपभ्रंश के साहित्य भण्डारों में स्फुट रचनाओं की भरमार है। स्तुति, स्तोत्र, पूजा-काव्य से लेकर भावना, कुलक, फागु, रास, छप्पय और विवाहलु आदि के रूप में और चर्यागीत, चर्यापद आदि रूपों में यह साहित्य

१. डा० हीरालाल जैन: भारतीय संस्कृति के विकास में जैन-धर्म का योगदान, पृ० १७९।

२. डा० रामसिंह तोमर : प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य, पृ० ७०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध है। इस संपूर्ण साहित्य का काव्यशास्त्रीय, विशेषतः 'छन्द-शास्त्र एवं अलंकार विधान' की दृष्टि से और भाषा-शास्त्रीय, विशेषतः शैली-विज्ञान विषयक अनुशीलन महत्त्वपूर्ण होगा। महाकवि तुलसी की 'पार्वती मंगल एवं जानकी-मंगल जैसी रचनाओं का जैन रचनाकारों की 'विवाहलु' रचनाओं से क्या सम्बन्ध है? आदिकालीन 'रासो काव्य परम्परा' का विकास खोजा जाना इसी आधार पर संभव है। इन रचनाओं के शोधपरक अनुशीलन से लोक-शैली की परम्परा ज्ञात हो सकेगी। इन रचनाओं में प्रयुक्त लोक 'शब्दावली का भाषाशास्त्रीय अनुसंधान' सर्वथा अछूती दिशा सिद्ध होगी।

(ज) व्याकरण एवं छन्दशास्त्र से सम्बद्ध साहित्य—व्याकरणशास्त्र के विकास की छिन्न-भिन्न शृंखलाओं को जोड़ने के लिए 'जैन-व्याकरणशास्त्र' का अनुसंधान भले ही कष्टसाध्य, समयसाध्य एवं धनसाध्य है, लेकिन है अनिवार्य ही। जैन-साहित्य मूलतः जनभाषा में रचा गया और जब बहुत सा साहित्य निर्मित ही हो गया होगा, तो स्वभावतः नाना प्रयोगों तथा शब्दरूपों को अनुशासित करने के लिए व्याकरण-शास्त्र की आवश्यकता हुई होगी।[1] अपभ्रंश-वैयाकरणों की व्याकरण-कृतियों का 'कालक्रमानुसार शोध' आज की आवश्यकता है। हेमचन्द्राचार्य के 'शब्दानुशासन' में भाषा के तत्त्वों का विवेचन जैन-व्याकरण की सुपुष्ट परम्परा का द्योतक है। जैन-विचारकों का ध्यान छन्दशास्त्र एवं कोशविज्ञान पर भी गया है, फलतः छन्दशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा अपभ्रंश में उपलब्ध है, जिसने आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल को प्रभावित किया था। स्वयंभू कृत 'स्वयंभू छन्द' जैसे अनेक ग्रन्थ सम्पादन एवं विवेचन की अपेक्षा रखते हैं। कोश-विज्ञान को अत्याधुनिक दिशा मानने वालों को अपभ्रंश की 'कोश-परम्परा' का ज्ञान कराना अनुसंधाताओं का दायित्व है।

जैन-विद्या से संबद्ध अपभ्रंश एवं हिन्दी के जैन-साहित्य में शोध की व्यापक संभावनाएँ प्रत्येक क्षेत्र में परिव्याप्त हैं और विश्व की शोधप्रज्ञा के लिए यह खुला आमंत्रण बनकर प्रस्तुत है। इस साहित्य के शोध से जैन-धर्म, दर्शन, संस्कृति, कला, समाज, राजनीति एवं अन्यान्य क्षेत्रों में नवीन तथ्यों के उद्घाटन की संभावना से किसे इन्कार हो सकता है।

●

१. डॉ० हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति के विकास म जैन-धर्म का योगदान, पृ० १८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org